सूर्याराधक कवि मयूर की कृति- 'सूर्यशतकम्'

श्री महेश प्रसाद पाठक

ईसा की 7वीं शती के कवि मयूर शोणनदी के किनारे के मूल निवासी महाकवि बाणभट्ट के श्वशुर माने जाते हैं। सम्भावना यही बनती है कि कवि मयूर भी इसी क्षेत्र के रहे होंगे। उनका संस्कृत काव्य सूर्यशतक सूर्यदेव के लौकिक तथा अलौकिक रहस्यों का एकत्र वर्णन प्रस्तुत करता है। इसमें एक ओर कवि ने वैदिक परम्परा का अनुपालन किया है तो दूसरी ओर आयुर्वेद में वर्णित तथ्यों का भी समावेश करते हुए सूर्य की महिमा का गान किया है। इस विशिष्ट काव्य का परिचय तथा विषयवस्तु यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

संस्कृत वाङ्मय में सूर्य की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है; ऋग्वेद में अकेले सूर्यदेव के लिये दस सूक्त समर्पित है; इन्हें दूरद्रष्टा, सर्वद्रष्टा और सर्वेक्षक (समस्त विश्व के) कहा गया है-

'तं सूर्यं हरितः सप्त यद्दिवः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति।' (ऋग्वेद-4/13/3)।

अथर्ववेद में इन्हें नेत्रों का अधिपति कहा गया है (अथर्व.- 5/24/9)। पुराण, उपनिषदों, तन्त्रग्रन्थों में सूर्य की अमित महिमा कही गयी है, जिसका विस्तार करना यहाँ कठिन है; लेकिन यहाँ आलोच्य विषय सूर्यशतक है।

कवि मयूर का चरित-

कवि मयूर का काल विद्वानों ने सातवीं शताब्दी तय किया है; कहीं कहीं इन्हें महाकवि बाण का श्वसुर कहा गया है (प्रबन्धचिन्तामणि)। इनकी रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि ये सूर्य-चिकित्सा के जानकार होंगे; रोग-विशेष का इन्हें सूक्ष्म ज्ञान था; इन्हें आभास ही नहीं; बल्कि इनका निश्चित मत था कि सूर्यदेव में रोगनाशक की अद्भुत क्षमता विद्यमान है; ये अन्य देवों की अपेक्षा सूर्य को अधिक सम्मान देते थे; इनके श्लोकों में यह भी पता चलता है कि ये

* *"गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा, पो.+जिला-गिरिडीह, (815301), झारखण्ड, Email: pathakmahesh098@gmail.com) मो. न. 9934348196.*

"एक अन्य जनश्रुति के अनुसार जब इन्हें कुष्ठरोग हो गया था, तब सम्राट् हर्षवर्धन ने इन्हें राजसभा में आने से मना कर दिया था, इसी समय इन्होंने शास्त्रज्ञानसम्पन्न एवं वेद-वेदान्तियों के सदृश 'सूर्यशतक' की रचना की। इनके इसी स्वरचित शतक के पाठ से भगवान् सूर्यदेव प्रसन्न होकर इन्हें नीरोग किया था।"

विष-वैद्य या सर्प-वैद्य भी रहे होंगे; ये अपनी कवित्वसाधना के द्वारा प्रतिष्ठित होकर लोकप्रसिद्ध होकर तत्कालीन सम्राट् हर्षवर्द्धन से भी प्रशंसित हो चुके थे। इसका उल्लेख मधुसुदन की भावबोधिनी टीका में मिलता है। हर्षवर्द्धन के समय सूर्योपासना का प्रचलन था; इसका प्रमाण बाणभट्ट कृत 'हर्षचरित' में देखा जा सकता है कि हर्ष के पिता स्वभावत: आदित्यभक्त थे और प्रतिदिन 'आदित्यहृदय' का पाठ किया करते थे।

डा. भगवतशरण उपाध्याय की 'प्राचीन भारत का इतिहास' (पृष्ठ-306) में यह वर्णन भी मिलता है कि हर्षवर्धन के काल में प्रयाग में तीन दिनों का एक अधिवेशन हुआ था, जिसमें पहले दिन भगवान् बुद्ध की मूर्ति की प्रतिष्ठा की गयी थी तथा दूसरे दिन सूर्य की और तीसरे दिन शिव की पूजा की गयी थी। इसी पुस्तक में यह भी वर्णित है कि हर्षवर्धन के बाद के अन्य राजा ललितादित्य मुक्तापीड़ (724-760ई.) ने मार्तण्डमन्दिर का निर्माण करवाया था। इसी सन्दर्भ में एक बात यह भी सामने आती है कि सम्भव है कि सम्राट् हर्ष ने इनका 'मयूराष्टक' ही सुना था, जो जनसमूह के समक्ष पहली बार प्रकाश में आया हो।

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार जब इन्हें कुष्ठरोग हो गया था, तब सम्राट् ने इन्हें राजसभा में आने से मना कर दिया था, इसी समय इन्होंने शास्त्रज्ञानसम्पन्न एवं वेद-वेदान्तियों के सदृश 'सूर्यशतक' की रचना की। इनके इसी स्वरचित शतक के पाठ से भगवान् सूर्यदेव प्रसन्न होकर इन्हें नीरोग किया था।

मयूर के विषय में आज भी विद्वानों का शोध जारी है। इनकी रचनाओं में प्रचलित एवं अप्रचलित शब्दालंकारों का विद्या देखी जा सकती है। इनके श्लोकों में अद्भुत कल्पनाशीलता, शब्दालंकरण, अर्थालंकरण का प्रयोग मिलता है; इनकी इस शैली से पता चलता है कि ये उच्चकोटि के कवित्वप्रतिभा सम्पन्न विद्वान थे।

मयूर द्वारा रचित सूर्य-साहित्य

उपर्युक्त प्रकरणों में मयूर रचित दो नाम आये हैं- पहला 'मयूराष्टक' तथा दूसरा 'सूर्यशतक'; 'मयूराष्टक' में कुल आठ पद्य है, जिसमें इस अष्टक का प्रारम्भ भगवान् शिव और विष्णु को प्रणाम करते हुए आरम्भ किया गया है। 'सूर्यशतक' इनकी दूसरी रचना है जिसमें सौ पदों में सूर्याराधना की गयी है तथा

इस रचना से वह रोगनाशक छठा श्लोक है-

शीर्णाघ्राणाङ्घ्रिपाण्वीन्व्रणिभिरपघनैर्घर्घराव्यक्तघोषान्
दीर्घाघ्रातानघौघः पुनरपि घटयत्येक उल्लाघयन् यः।
घर्मांशोस्तस्य वोऽन्तर्द्विगुणघनघृणानिघ्ननिर्विघ्नवृत्ते-
र्दत्तार्घाः सिद्धसङ्घैर्विदधतु घृणयः शीघ्रमंहोविघातम्।।6।।

एक सौ एकवें पद में यह कहा गया है कि ये सौ श्लोक सूर्यभक्ति से सम्बन्धित हैं, जो संसार की समृद्धि एवं जनकल्याण के लिये ही लिखे गये हैं।

सूर्यशतकम् की विषयवस्तु

सूर्य किरणें कल्याणकारी हैं- सूर्य की रश्मियाँ, जो नवपल्लव के समान कान्ति वाली प्रतीत होती है- वे कल्याणकारी हैं। रचनाकार का कहना है कि सूर्य किरणों में जो उष्णता होती है वह यूँ ही नहीं बल्कि इसकी तुलना निरन्तर और अत्यधिक भ्रमण यानि तीनों लोकों में पर्यटन करने के कारण श्रमजन्य ऊष्मा से ही की जा सकती है। सूर्यदेव के उदय होने से दसों दिशाएं इनकी विस्तीर्ण एवं घनीभूत रश्मियों से आकाश को आच्छादित करती हैं। इनकी ताम्रवर्ण वाली किरणें समस्त अनिष्टों के निवारण के लिये एवं ओषधियों के संरक्षण के लिये प्रकाशित होती हैं; इनके उदयाचल की दिशाओं की लालिमा उसी प्रकार उद्भासित होती हैं जिसप्रकार पंखों के कटने पर उनके घावों से रक्तस्राव हो रहा हो- (श्लोक-2-5); प्रातःकाल में दर्शनीय दिनपति के तेज सबों के अभिलषित प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करने में ही व्यस्त रहने वाले उ9ाम गुणों से प्रशंसनीय सूर्यदेव जो अन्धकार के नाम से भी परिचित नहीं हैं, उन सूर्य की प्रदीप्त कान्ति सबों के लिये इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति के लिये हों (श्लोक-24)।

कवि मयूर ने सूर्य की तुलना एक कलाकार के रूप में की है तथा समस्त संसार को चित्रपट कहा है, जिनमें सूर्यदेव सम्पूर्ण संसार को अपनी तुलिका से श्वेत, कृष्ण, पीत और अरुण आदि रंगों से चित्रित करते हैं; जिसके कारण यह हमारे नेत्रों को अमित सुख प्रदान करती हैं। सूर्य की किरणों का सम्बन्ध उच्चकोटि के ज्ञान से भी जोड़ा जाता है। जगत् में इनकी ज्योति रात्रि को तिरस्कृत करने वाली होती है जो कुछ ही योगियों के द्वारा ज्ञानगम्य है, यह नश्वर होते हुए भी नित्य, समीपस्थ होते हुए भी दूरस्थ, प्रत्यक्ष होते हुए भी परोक्ष, विस्तीर्ण होते हुए भी अणुरूप, तीव्र होते हुए भी मोक्ष के हेतुभूत कारण हैं। इसका सामान्यतया अर्थ यही होता है कि सूर्य का भौतिक स्वरुप अर्थात् बाह्यरूप तो सबों को ज्ञात है किन्तु इनका अन्तःरुप यानि आध्यात्मिक स्वरुप सूर्याभ्यासी योगियों के लिये हो बोधगम्य है; (श्लोक-29)।

कवि ने सोये हुए संसार की तुलना सर्पदष्ट मनुष्य से की है तथा इसकी औषधि सूर्यकिरण से की है जिसमें भेषजत्व गुण विद्यमान होते हैं; क्योंकि सोये हुए व्यक्ति की श्रवणशक्ति क्षीण हो जाती है, नेत्र निमीलित रहते हैं, रसनेन्द्रिय जड़वत् हो जाती है, मन अपहृत हो जाता है तात्पर्य है कि इन्द्रियों के व्यापार शून्य हो जाते हैं। इस अवस्था में मात्र श्वास-प्रश्वास

ही शेष रह जाती है, तब इस प्रकार से ग्रस्त लोगों को (सोये हुए जगत् को) सूर्यदेव ही विषापहारी भेषज का प्रयोग कर जगाते हैं (श्लोक-31)।

रोगनाशक शक्ति-

कहा जाता है कि मयूर को जो कुष्ठरोग हुआ था उसे स्वयं भगवान् सूर्यदेव ने इस शतक के 'छठे श्लोक' के उच्चारण के बाद प्रकट होकर इन्हें रोगमुक्त किया। इस श्लोक में जो लक्षण कहे गये हैं, वे निश्चित ही इस रोगविशेष के लक्षण के रूप में वर्णित हैं जैसे- गलित नासिका, गलित हस्त एवं पाद वाले, दुर्गन्धयुक्तव्रण, अस्पष्ट उच्चारण आदि। वहीं पीतवर्ण वाले सूर्य अश्व की किरणों का भी वर्णन है, जो यह संकेत देता है कि पीलिया रोग के लिये इनकी किरणों का सेवन ओषधि के समान है। इनकी किरणों को कल्पवृक्ष कहा गया है, जो समस्त अभीष्ट को प्रदान करने वाली होती है (श्लोक-6, 7,10)।

प्रकृति-संरक्षण-

"आदित्याज्जायते वृष्टि:"- सूर्य ही वृष्टि के कारण हैं; क्योंकि ग्रीष्मकाल में ये समुद्र जल का कर्षण कर आकाश में नवमास तक गर्भरूप धारण किये हुए जल (रसायनरूप) को वर्षाकाल में वृष्टि द्वारा जन्म देते हैं। यह जल-पान सूर्य-किरणों के माध्यम से मेघ ही करते हैं जिनके सहायक आकाश हैं। जल को आकृष्ट करने वाली तथा पुन: प्रदत्त जल से संसार को आनन्द प्रदान करनेवाला कहकर रचनाकार ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि सूर्यदेव हमारी वसुधा के लिये तथा समस्त जगत् के लिये कितने कल्याणकारी हैं (श्लोक-9,30); जिनके प्रकाशित होने से ऋतुएँ व्यवस्थित रहतीं हैं, लता एवं वृक्षादि में फल-फूल नीयत समय में आती है, उनके द्वारा प्रदत्त वृष्टि सबको आनन्दित करने वाली होती हैं, पवन प्रवाह में व्यवधान नहीं होता, नक्षत्र समूह निर्मल आभा को धारण करते हैं, समुद्र अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करते, त्रिलोक अपने कार्य से विचलित नहीं होते; (श्लोक-87)। इस प्रकार समस्त संसार के पोषण एवं रक्षण के लिये इनकी भूमिका प्रणम्य कही जा सकती है।

सूर्य अश्व

सूर्य के अश्व की महनीय महत्ता प्रदर्शित करते हुए इनसे भुवनों की रक्षा करने के लिये प्रार्थना की गयी है। इनके लिये कहा गया है- ये जब चलते हैं तब इनके खुरों से मेरुपर्वत के शिखर या पटल चूर्णित नहीं होते। इनकी हिनहिनाहट से ही समस्त पापों का विनाश हो जाता है (श्लोक-48)।

सूर्य सारथि वैनतेय अरुण

सूर्यदेव के सारथि विनता पुत्र अरुण (गरुड़ के अग्रज) हैं, जो अपने निम्नभाग से शून्य हैं। इनके लिये कवि ने उपनिबद्ध उपमालंकार प्रायोजित करते हुए कहा है- उदयाचल रूपी रंगमंच पर रात्रि रूपी यवनिका के हट जाने से प्रकटित शोभा वाले एवं सूत्रधार सदृश आचरण करते हुए नक्षत्ररूपी अपूर्ण पुष्पाञ्जलि को विकीर्ण करने वाले एवं सूर्य के संसारभ्रमण विषयक महान् नाटिका की प्रस्तावना करने वाले सूर्य के सारथि सबों की रक्षा करें; (श्लोक-50)।

एक ही हरि (विष्णु) के पराक्रम द्वारा वाहन बनाये गये गरुड से हरि (अश्व) को श्रेष्ठ कहा गया है। सारथी अरुण को समस्त संसार के प्रति लालिमा

(प्रेम) प्रकट करने वाला कहा गया है (श्लोक-51)। वेदों को परम पवित्र करने वाले ॐ की भाँति अरुण सूर्यरथ के अग्रभाग पर स्थित रहते हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार प्रणव (ॐकार) वेदों के अग्रभाग में स्थित रहते हैं; पुनः अरुण यागादि कर्मों में उद्यत मनुष्य को भी उसी प्रकार पवित्र करते हैं, जिस प्रकार अरुणोदय के बिना यागादि कार्य का न तो कोई प्रयोजन सिद्ध होता है और न ही महत्त्व (श्लोक-55)। सूर्यसारथि से सम्बन्धित श्लोकों में अन्य श्लोकों की भाँति इनसे भी सबों की रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है।

सूर्य रथ-

अनुपम प्रशंसेय सवितृरथ से कहीं समृद्धि की याचना की गयी है, तो कहीं रक्षा करने की; तो कहीं-कहीं पाप और शत्रुओं के विनाश के लिये प्रार्थना की गयी है; यह एकचक्र रथ भूमि की संगत से परे होने के कारण निःशब्द गौरवपूर्ण गमन करता है; नितान्त श्रान्त एवं रथ के अत्यधिक भार होने के कारण सहन करने में असमर्थ वायु भी एक स्कन्ध से दूसरे स्कन्ध पर वहन करते हैं (श्लोक-62-63)।

सातवीं शताब्दी की यह रचना आज भी प्रासंगिक है एक श्लोक में कहा गया है- तीव्र भानु का रथ मन्दाकिनी के बालुका तट पर तीव्र गति से चलता है, लेकिन नगर के मन्दराचल पर इसकी गति धीमी हो जाती है। तात्पर्य है कि सूर्य किरणें विस्तृत प्रदेशों में प्रखर रहती है वहीं नगर, भवन आदि क्षेत्रों में मन्द पड़ जाती है; क्योंकि नगर के मार्ग अपेक्षाकृत कम विस्तृत होते हैं और भीड़ आदि के कारण रथ की गति मन्द भी पड़ जाती है। संसार का उपकार करने वाले नित्यकार्यसंलग्न सूर्यरथ के वेग की वन्दना देवताओं के समूह किया करते हैं जिसमें चक्र धारण करने वाले विष्णु चक्रारपंक्ति की, हरि (इन्द्र) हरि (अश्वों) की, धूर्जटि (शिव) पताका के अग्रभाग की, चन्द्रमा अक्ष की, वरुण अरुण की और कुबेर कूबर के अग्रभाग की स्तुति किया करते हैं। यहाँ वर्णित देवता सभी अपने-अपने नामों से मिलते-जुलते रथ के भाग की वन्दना करते दीखते हैं (श्लोक-71)। सूर्यरथ की अतुलनीय महिमा कहते हुए कहा गया है- यह गगन-वारिधि पर में घूमता हुआ एक अन्य मन्दराचल ही है। इस रथ के चक्र के समीप सिद्ध, साध्य, मरुत् आदि स्थित होकर स्तुतिरत रहते हैं।

सूर्यमण्डल

सूर्यदेव एवं उनके समस्त भ्रमणकारी अंग-उपांगों के सूक्ष्म निरीक्षण के साथ-साथ सूर्यमण्डल को भी मंगलकारक, अशुभ का शमन करने वाला कहा गया है। इसे दिन का प्रशस्त बीज, अन्धकार को दूर करने में सक्षम अञ्जन सदृश, मुक्तिभागी योगियों का द्वार, सम्पूर्ण भुवन के तेज के एकमात्र आश्रय, पूर्वीय पर्वतों के अलंकार के सदृश, पूर्व दिशा के ग्रहों एवं नक्षत्रों को धूमिल करने वाला, दीप्ति के ईश (सूर्य) का मण्डल कहकर महिमामंडन किया गया है। सूर्यमण्डल प्रथम पूर्व दिशा में प्रकाशित होकर इसे दिशा-श्रेष्ठ बनाने वाला, जिसके उदित होते ही अग्नि की कान्ति क्षीण हो जाती है, ओस के क्षीण-कण की भाँति चन्द्रमा के अस्त होते ही तारों का कोई रक्षक नहीं होता, वैसे ही इस लोक के सभी संयमी पुरुषों के भवसागर सदृश रवि के मण्डल सबों को मोक्ष प्रदान करें (श्लोक-73-80)।

सूर्यदेव के विभिन्न रूप

श्लोक-91 में सूर्य के आठ रूपों का वर्णन मिलता है। त्रिभुवनपाल द्वारा विरचित सूर्यशतक की टीका में इन्हें अष्टमूर्ति के रूप में प्रतिष्ठा की गयी है-

'क्षिति-जल-पवन-हुताशन-यजमानाकाश -सोम-सूर्याख्याः।'

-पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, यजमान, आकाश, चन्द्रमा और सूर्य ये शिव की अष्ट मूर्तियाँ हैं। इस प्रकार इन्हें शिव रूप में दर्शाया गया है। पुनः दूसरे श्लोक (92) में इन्हें विष्णु रूप में प्रतिष्ठित किया गया है- 'मुर के शत्रु (विष्णु) की भाँति दिवसों के स्वामी सूर्य सबों की रक्षा करें।' इसके बाद (श्लोक-93) में इन्हें ब्रह्माजी के रूप में कमलों की शोभा प्रकट करनेवाले (ब्रह्मा) चारों दिशाओं के मुख को निर्मल कान्ति से दीप्तिमान बनानेवाले सूर्य, जो दो भागों में विभाजित, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की भाँति हैं सबों की शीघ्र ही समृद्धि प्रदान करें, (ब्रह्माण्ड- ब्रह्मा की समाधि शक्ति से दो भागों में विभक्त हुआ, इसका एक भाग स्वर्ग कहलाया तथा दूसरा पृथ्वी कहलाया, इसी कारण ब्रह्माजी को 'द्वेधा' भी कहा जाता है।)

इस प्रकार इन्हें कहीं प्रलय अवस्था में द्वादशरूप (धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता और विष्णु) प्रकट करनेवाले, इन्द्र से- सहस्रनेत्र वाले (श्लोक-94), कहीं त्रिदेवों से, तो कहीं शिव के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप से (श्लोक-88) की गयी है; दयालुता-भगवान् अर्क की दयालुता इस बात से भी सिद्ध होती है कि ये अपनी दीप्त रश्मियों को आकाश में मृदु कर देते हैं जिससे आकाश गंगा शुष्क न हो, नन्दनवन (इन्द्र-वाटिका) की शोभा दग्ध न हो, देवताओं के सुमेरुपर्वत के स्वर्णिम शिखर पिघले नहीं, अपनी इच्छा से ही संसार के महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले अर्यमा (सूर्य) समस्त पाप के विनाशक, इनके चरण (किरणों) के समीप रहनेवालों को भी परम प्रबोध कर मोक्ष प्रदान करनेवाले सबों की रक्षा करें (श्लोक-83-84)।

ये स्वर्ग एवं मोक्ष के मूल कारण हैं, जो विकाररहित हैं, जो दिनकर का मण्डल आकाश में तप रहा है, वही ऋचाएँ हैं। इनकी किरणें जो चिंगारी फेंकती हैं वह सामवेदीय गीत हैं, मण्डल में जो अणुमात्र ध्यानगम्यपुरुष है वही यजुर्वेद है, जो अद्वितीय गुणों के कारण आदित्य (अदिति के पुत्र) नाम धारण करते हैं वह अंशुमान सबों का कल्याण करें; (श्लोक-89-90); भगवान् सूर्य से ही तीर्थों की महत्ता परिलक्षित होती है।

भगवान् सूर्यदेव को किसी से अलग न समझकर अपितु अभिन्न समझना चाहिये। इनमें सभी देवों की शक्ति निहित है; इसलिये यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि इनकी तुलना किनसे की जाय। ये कहीं देवता हैं तो कहीं बान्धव हैं, कहीं ये मित्र हैं तो कहीं आचार्य; कहीं गुरु हैं तो कहीं स्वामी, कहीं पिता हैं तो कहीं चराचर के प्राण। ये सभी कालों में सभी दिशाओं एवं दशाओं में संसार को उपकृत करने वाले हैं। इनके कृपाप्रसाद से आरोग्य, कवित्व, बुद्धि, अतुलितबल, कान्ति, आयु, विद्या, ऐश्वर्य, अर्थ आदि सभी प्राप्त हो जाते हैं।

***